लेख

भरतपुर की ये किशोरियां अब पढ़ना-लिखना चाहती हैं।

बेड़ियों को तोड़ती किशोरियां

जुही

हमारे देश को आज़ाद हुए छः दशक हो चुके हैं। समाज में रीति-रिवाजों के नाम पर, धर्म की आड़ में स्त्री-पुरुष, बेटी-बेटे के बीच फ़र्क़ व असमानताएं आज भी विद्यमान हैं। हालात बेहतर हुए हैं- आगे भी होंगे, इसी विश्वास के साथ डटकर मुकाबला कर रही हैं हमारी युवा किशोरियां। समाज के हाशिए पर खड़ी गरीब, पिछड़े वर्गों की ये सशक्त सबलाएं अपनी आज़ादी की ओर क़दम बढ़ा रही हैं। तिरुपुर की सुमंगलियां, भरतपुर के यौन कर्मियों की बेटियां और सतारा की नाकुसाएं अपने छोटे-छोटे रोज़मर्रा के संघर्षों से हमें विस्मित कर रही हैं।

बदलाव की लहर

जेठ की तपती दोपहरी, धूल भरी कच्ची सड़कें, यहां-वहां छितरे कीकर-खजूर के पेड़ों के पास गुज़रते ट्रक की रफ्तार धीमी हो जाती है और चालक ध्यान से दाएं-बाएं देखने लगता है। तभी दुपट्टा ओढ़े एक युवती धूल के बीच से निकलती है और कुछ ही पल में ओझल हो जाती है। भरतपुर की तहसीलों के बीच इस सड़क पर दिखाई देने वाली जवान युवती आने-जाने वाले ट्रक रोक देती है। चालक जानते हैं कि पंद्रह-सोलह वर्ष की, चमकीली त्वचा व हल्के रंग की आंखों वाली बेड़िया, नट, कंजर, बवारिया, बजगर आदि जातियों की किशोरियां कुछ ही रुपयों के बदले उनकी हो जाती हैं। कच्ची उम्र की इन किशोरियों को उनके मां-बाप शहर और आस-पास के चकलों में थोड़े से पैसों के बदले जिस्मफ़रोशी के लिए दलालों के साथ भेज देते हैं।

पर आज माहौल कुछ और ही है। अब गांव की ये किशोरियां अपने काम से काम रखती हैं। घरों के आंगन में कपड़ें धोतीं, खाना पकाती, मवेशी नहलाती या खेलती किशोरियां एक नई दुनिया का एहसास दिलाती हैं।

गांववाले बताते हैं, "अब हम अपनी लड़कियों को पढ़ाते-लिखाते हैं। जब वे अच्छे काम के ज़रिये पैसे कमा सकती हैं तो उन्हें वेश्यावृति में क्यों भेजा जाए?"

आंखों में कितने सपने हैं।

इन गांवों में शिक्षा की भूख स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। लगभग हर दीवार पर बच्चों को शिक्षित करने के महत्व पर नारे व संदेश लिखे हैं। साफ-सुथरे नीले कपड़ों में सुबह-सवेरे अनेक किशोरियां स्कूल जाती दिखाई पड़ती हैं, पैदल, साइकिल या जुग्गड़ गाड़ियों पर।

कुछ युवतियों से बात करने का मौका भी मिला। काफ़ी की मां-नानी यौनकर्मी रह चुकी हैं। पर किशोरियां इस काम को करने से साफ़ इंकार कर देती हैं। वे डाक्टरी पढ़ना चाहती हैं, शहरों में जाकर अच्छी नौकरी करने का इरादा रखती हैं। गांव के बुजुर्ग बताते हैं कि उन्नीसवीं सदी मे जब कबीले एक जगह बसने लगे तभी से उनकी कलाविद किशोरियों को नवाब-राजा अपने हरम में रखने लगे। नवाबी ठाट-बाट के खत्म होते-होते जिस्मफ़रोशी पेट भरने का ज़रिया बन गया। बेटी के पैदा होने पर यह काम परिवार चलाने के लिए उसकी नियति बन जाता था। घर के मर्द कोई काम नहीं करते थे। वे आराम से बैठकर खाते-पीते थे। धीरे-धीरे दूसरी जाति की लड़कियां ब्याह के लिए इन कबीलों में आनी बंद हो गई क्योंकि समाज इन्हें हिकारत की नज़र से देखता था। बेटियों को अपने भाई की शादी के लिए दूसरी जाति की दुल्हनें खरीदनी पड़ती थीं और कमाई का साधन सिर्फ वेश्यावृति था। इस चक्रव्यूह में पिसती औरतों के पास कोई विकल्प नहीं थे।

पर अब ऐसा नहीं होता। अब यहां की किशोरियों का जीवन सुधर गया है। भरतपुर की यौन कर्मियों की ये बेटियां अब पुराने रिवाजों को अपने पैरों की बेड़ियां बनने नहीं देतीं। वे अपने सपनों को पूरा करने के लिए जी-तोड़ प्रयास कर रही हैं। अब बस ज़रूरत हैं तो कुछ सरकारी प्रयासों की। किशोरियां चाहती हैं कि उन्हें शिक्षा व नौकरियों में आरक्षण मिलें, 'हम घुमन्तु जातियों के लोग हैं और हमारे कल्याण के लिए सरकार को आगे आना ही होगा।'

नाकुसा- यही तो मेरा नाम है

वह तेरह वर्ष पहले इस दुनिया में आई थी। जब भी कोई उसका नाम पुकारता है उसके अंदर कुछ मर सा जाता है। उसका नाम रखा गया था- नाकुसा-जिसका मराठी में अर्थ है- अनचाही। सतारा ज़िले के कमाठी गांव की यह लड़की अपनी मां से सवाल करती है, 'जब अपने

हर हाल में खुश

लोग मुझे चाहते ही नहीं थे तो पैदा होते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला?'

यहां कई बेटियां अपने माता-पिता से यही सवाल पूछती हैं। महाराष्ट्र के स्वास्थ्य विभाग के सर्वेक्षण के अनुसार इस ज़िले में लगभग तीन सौ पचास लड़कियों का नाम नाकुशी या नाकुसा रखा जाता है। सामाजिक कार्यकर्ताओं का मानना है कि जब माता-पिता ही अपनी बच्ची का नाम नाकुसा रख, उसे अनचाहे होने का एहसास कराते हैं तो लड़की की मानसिकता पर बुरा असर पड़ता है। वह अपमान और हीन भावना से ग्रस्त होकर जीती है और शादी के बाद बेटी पैदा करने से डरती है।

नया नाम, नई पहचान

देश के अन्य हिस्सों की तरह यहां भी लोग बेटे की चाह रखते हैं। दम्पत्ति बेटा पैदा होने तक प्रयास करते रहते हैं और इस दौरान पैदा होने वाली बच्चियों का नाम नाकुसा रख दिया जाता है। यही यहां का रिवाज है।

पर हैरानी की बात यह है कि इस इलाके में पैदा होने वाली ये किशोरियां दुखी, अपमानित या घबराई नहीं होतीं। वे अपने दोस्तों, शिक्षकों और परिवार वालों के बीच बड़े स्नेह और देखभाल के साथ बड़ी हो रही हैं। बाहरी दुनिया वालों के समक्ष ये किशोरियां उम्मीद और जीवन में कुछ बड़ा करने का हौसला रखती हैं। जैसा कि एक नाकुसा ने बताया, जब मैं पैदा हुई तो मेरे बाबा, जो एक पोता चाहते थे दुखी हो गए। उन्होंने रिवाज के अनुसार मेरा नाम नाकुसा रख दिया। पर मेरे माता-पिता ने मुझे बड़े लाड़ प्यार से बड़ा किया। वे मुझे खूब पढ़ा-लिखा रहे हैं। मेरी सभी मांगे पूरी करते हैं। पूछने पर कि क्या उसके नाम की वजह से उसे शर्मिंदगी होती है वह बोली, 'थोड़ा बुरा लगता है, पर कोई भी मुझे चिढ़ाता नहीं है। मैं अपने माता-पिता से अपना नाम बदलने के लिए कह रही हूं पर यह हो नहीं पाया है।'

इस राज्य के स्वास्थ्य विभाग ने भी नाकुसा नाम की लड़कियों के परिवारों से उनका पुनः नामकरण करने की गुज़ारिश की है। एक अधिकारी ने बताया कि, 'हम अपनी बच्चियों को अब और शर्मिंदा नहीं करना चाहते। हम चाहते है यहां एक भी नाकुसा नाम की लड़की न रहे।'

परिवारों को समझाया जा रहा है कि एक प्रथा के चलते अपने घर की बेटियों के साथ नाइंसाफ़ी न करें। कई लोगों ने अपनी बेटी का नाम बदलने की प्रक्रिया शुरू भी कर दी है। एक लड़की का नाम ऐश्वर्या और दूसरी का नाम प्रवीणा रखा गया है। पर लोग अभी भी उनका पुराना नाम चलाते हैं क्योंकि वह उनकी जुबान पर चढ़ा है। पर ये बच्चियां लोगों को टोक देती हैं। जल्द ही ये बदलाव रंग लाएगा और नाकुसा नाम गुम हो जाएगा।

सुमंगली-अब अपनी शर्तों पर

इसे विडम्बना ही कहिए कि गरीब परिवार अपनी युवा बेटियों को तमिलनाडु की कताई मिलों में काम करने के लिए भेजते हैं। उनका उद्देश्य होता है कि ये लड़कियां

मिल में सिलाई करती हुई किशोरी।

अपने ब्याह के लिए कुछ पैसा इकट्ठा कर लें। पर ये किशोरियां इस काम में शोषण और हिंसा का शिकार होती हैं। काफी काम के बोझ व बीमारी से ग्रस्त होकर मर भी जाती हैं। इस स्कीम का नाम है सुमंगली- एक खुशहाल शादीशुदा स्त्री को तमिल भाषा में सुमंगली कहा जाता है।

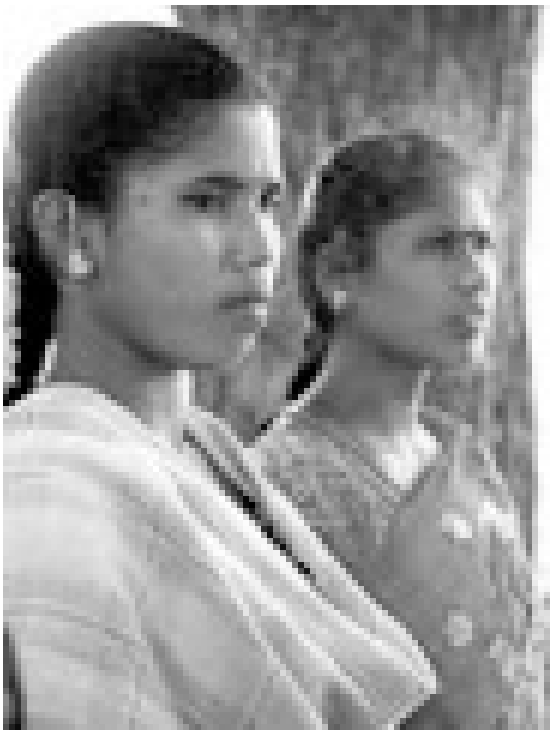

अब काम अपने अनुसार करेंगे।

तमिलनाडु में 13 से 18 वर्ष की उम्र की अविवाहित किशोरियों को पास की कताई मिलों में जबरन काम के लिए भेजा जाता है। तीन साल के अनुबंध के बाद लड़की को तीस से लेकर पचास हज़ार तक रुपये मिलते हैं जिससे परिवार उसकी शादी कर देता है। इस पैसे को कृपादान कहा जाता है। पर सच्चाई तो यह है कि तीन साल पूरे होने से पहले ही मिल मालिक किसी न किसी बहाने से लड़की को काम से निकाल देते हैं जिससे पैसा न देना पड़े।

तिरुपुर और कोयमबटूर में स्थित मिलों को हमेशा सस्ते श्रमिकों की ज़रूरत रहती है। हज़ार-दो हज़ार रुपये के बदले दलाल आस-पास के गरीब गांवों से ऐसे परिवार चुनते हैं जहां विवाह योग्य लड़कियां हों। ये लड़कियां तीन वर्ष मिल में रहकर दिन-रात काम करती हैं। कभी-कभार ही उन्हें अपने माता-पिता से मिलने की इजाज़त मिलती है। एक कमरे में दस से बारह किशोरियां रहती है। उनके रहने खाने-पीने, शौच आदि के कोई विशेष प्रबंध नहीं किए जाते। कड़ी मेहनत व कुपोषण से बच्चियां दमे, खांसी, खून की कमी, टीबी, महावारी अनियमितता जैसी बीमारियों का शिकार हो जाती हैं। इसके अलावा यौन शोषण और पुरुष कर्मचारियों द्वारा गाली-गलौज सहना भी एक आम बात है।

हिंसा, शोषण और नाइंसाफ़ी के इस ताने-बाने को तोड़ने के लिए कुछ गांवों की किशोरियां सामने आई हैं। उन्होंने अब इस सुमंगली स्कीम में भागीदारी करने से साफ़ इंकार कर दिया है। अगर मजबूरीवश उन्हें काम करना भी पड़े तो वे न्यूनतम मज़दूरी की मांग रखती हैं। साथ ही आठ घंटे काम और साप्ताहिक अवकाश की भी शर्त रखती हैं।

कुछ किशोरियों और उनके परिवारों ने एकजुट होकर गांव में दलालों का आना-जाना बंद कर दिया है। वे मिल मालिकों से सीधे बात करके सभी नियम तय करती हैं। हालांकि इलाके में कोई यूनियन अभी नहीं बने है फिर भी इन लड़कियों का दृढ़ निश्चय और एकजुटता देखते ही बनती है।

"हमें पेट भरने के लिए काम तो करना ही है पर सुमंगली स्कीम के झांसे में आकर हमें जान गंवाना और बीमार होना मंज़ूर नहीं है। अगर ज़िन्दा रहेंगे तभी तो सुमंगली बनेंगे। हमें मरने के नहीं, जीने के रास्ते खोजने हैं।" युवा किशोरी की ये आवाज़ दूर-दूर तक सुनाई देती है और उम्मीद की लहर सामने नज़र आती है।

जुही जैन, *नारीवादी लेखिका व कार्यकर्ता हैं। वह हम सबला का सम्पादन भी करती हैं।*